प्रेमचन्द और स्त्री विमर्श

डॉ. इशरत खान

स्त्री विमर्श हिन्दी साहित्य का चर्चित विषय रहा है। स्त्री विमर्श को यदि एक व्यापक अर्थ में देखने की कोशिश करें तो उसके उत्स आदिकाल से ही मिल जाते हैं। यह और बात है कि उस समय के रचनाकारों ने इस पर विशेष रूप से न लिखकर उल्लेखमात्र कर दिया हो, किन्तु इसका अर्थ यह नहीं कि उस समय का लेखक इस विमर्श से अंजान था।

हिन्दी उपन्यास का आरम्भ तो स्त्री विमर्श से ही हुआ। स्वतंत्रता-पूर्व के उपन्यासों में किसानों के बाद स्त्री की समस्याओं को ही प्रमुख रूप से चित्रित किया गया। इसका कारण उपन्यासकारों का नवजागरण की चेतना से प्रभावित होना था। इस दृष्टि से प्रेमचन्द-पूर्व गौरीशंकर कृत 'देवरानी जेठानी की कहानी', श्रद्धाराम फिल्लौरी की 'भाग्यवती' (१८७७) तथा 'सीमंतनी उपदेश' (पंजाबी महिला, नामोल्लेख नहीं, १८८२) आदि रचनाएँ महत्वपूर्ण कही जा सकती हैं।

तद्युगीन नारी-स्थिति को जाने बिना, प्रेमचन्द के स्त्री विमर्श को नहीं समझा जा सकता है। इसलिये सर्वप्रथम नारी-स्थिति को रेखांकित किया जायेगा।

ब्रिटिश शासनकाल में देश की पराधीनता और गरीबी के बाद भारतीय समाज का महत्वपूर्ण पक्ष नारी की स्थिति से संबंधित था। इस काल में भारतीय नारी की पराधीनता दोहरी थी। उसे न तो पारिवारिक सम्पत्ति में कोई अधिकार था और न वह स्वतंत्र रूप से अपनी जीविका अर्जित करने में समर्थ थी। प्रायः लड़कियाँ शिक्षा से वंचित थीं। माता-पिता अपनी कन्याओं का विवाह तिलक-दहेज देने में असमर्थ होने के कारण अयोग्य, निर्धन या बूढ़े व्यक्तियों से कर देते थे और लड़कियों की जिन्दगी नरक बन जाती थी। हिन्दू विधवा की स्थिति तो और भी दयनीय थी। सामाजिक बंधनों और कुप्रथाओं के कारण स्त्री की जिन्दगी गुलामी का पर्याय बनकर रह गई थी।

यद्यपि प्रेमचन्द के समय में भारतीय-नारी की प्रायः यही स्थिति बनी रही, परन्तु सामाजिक सुधार के आंदोलनों, विशेषकर स्वाधीनता आंदोलन के फलस्वरूप उनकी स्थिति में परिवर्तन आना शुरू हो गया था। प्रथम विश्वयुद्ध के बाद स्त्रियाँ भी नारी-मुक्ति आंदोलनों में पहल करने लगीं। १९१७ में इंडियन नेशनल कांग्रेस के अधिवेशन में (अध्यक्ष ऐनी बेसेन्ट) स्त्रियों के लिये समान राजनीतिक अधिकार की माँग स्वीकार की गई और स्त्रियों को मताधिकार प्रदान किया गया। सन् १९३० में गाँधी जी ने स्त्रियों के परदा प्रथा का विरोध करते हुये स्त्री-पुरुष के समान अधिकारों का जोरदार समर्थन किया।

प्रेमचन्द को भारतीय नारी से पूर्ण सहानुभूति थी। वे नारी को हर प्रकार से सुखी व अधिकार सम्पन्न देखना चाहते थे। इस संदर्भ में शिवरानी का कथन उल्लेखनीय है- "उनके दिल में स्त्री जाति के प्रति श्रद्धा थी। वे स्त्रियों को पुरुषों से बड़ा समझते थे।"

प्रेमचन्द ने सर्वप्रथम तद्युगीन भारतीय-नारी की त्रासदिक स्थिति का यथार्थ एवं मार्मिक अंकन किया है। इसका मुख्य कारण वे पराधीनता को मानते हैं। सुमन (सेवा सदन) निर्मला (निर्मला) आदि ऐसी ही परतंत्र नारियाँ हैं। इसी कारण सुमन को वेश्या जीवन अपनाना पड़ता है और निर्मला का कारुणिक अन्त होता है। उसकी करुणा इन शब्दों में व्यक्त हुई है... "बच्ची को आपकी गोद में छोड़ जाती हूँ। मैं तो इसके लिये अपनी जिन्दगी में कुछ न कर सकी, सिर्फ जन्म देने की अपराधिनी हूँ, चाहे क्वारी रखियेगा, चाहे जहर देकर मार डालियेगा, मगर कुपात्र के गले न मढ़ियेगा।"

प्रेमचन्द विधवा-नारी की जीवन दशाओं के प्रति सचेत हैं। विधवाओं की विवशता से भरी सामाजिक स्थिति का उन्होंने बड़ा करुण चित्र अपने साहित्य में अंकित किया है। 'वरदान' की बृजरानी पति की मृत्यु के बाद अपने को असहाय पाती है। उसका कहना है- "उसका सुहाग उसका जीवन है और सुहाग का उठ जाना उसके जीवन का अन्त है।" 'गबन' में पति की मृत्यु के बाद रतन की दुर्दशा, तत्कालीन समाज में विधवा की असहाय स्थिति का रोमांचकारी उदाहरण है। 'रंगभूमि' और 'गोदान' में अभिजातवर्गीय इन्दु, गोविन्दी की विवश स्थिति यह सिद्ध करती है कि स्त्री चाहे सम्पन्न ही क्यों न हो, दासता की जंजीरों में जकड़ी हुई थी।

प्रेमचन्द के स्त्री-विमर्श की यह विशेषता है कि उनके स्त्री पात्र, चाहे वह उच्च वर्ग के हों या निम्न वर्ग के, विद्रोह अवश्य करती हैं। वे शोषण, अत्याचारों को चुपचाप बरदाश्त नहीं करती हैं। प्रेमचन्द के उपन्यासों में ऐसी विद्रोही नारियाँ मिलती हैं जो अपने अधिकारों के प्रति सजग हैं। स्त्रियों के प्रति, समाज में अन्यायपूर्ण रवैये के प्रति विद्रोह 'सुमन' भी करती है। पति द्वारा दिया गया निर्वासन उसे घोर अन्याय प्रतीत होता है - इसकी प्रतिक्रिया में वह न पैरों पड़ती है, न गिड़गिड़ाती है। प्रस्तुत पंक्तियों में उसका विद्रोही रूप दिखाई देता है... "हाँ यों कहो कि तुझे रखना नहीं चाहता। मेरे सिर पर पाप क्यों लगाते हो? क्या तुम्हीं मेरे अन्नदाता हो? जहाँ मजूरी करूँगी, वहीं पेट पाल लूँगी।" वह पद्मसिंह शर्मा को भी नहीं बख्शती। शर्मा के घर से निकाले जाने पर वह, उनको दुरात्मा, भीरू, दयाशून्य तथा नीच तक कहती है।

उर्दू में मिर्जा हादी रुसवा कृत 'उमरावजान अदा' (१८९९) उपन्यास में ऐसा विद्रोह भाव

नहीं मिलता है। वह (उमरावजान) यथास्थिति को स्वीकार कर लेती है। 'सुमन' का संघर्ष 'उमराव' से आगे का संघर्ष है। उमरावजान का चरित्र अपने भीतर झाँकने के लिये पाठक को बाध्य करता है। सुमन का चरित्र, साक्षात् उसके बाहर के समाज को उधेड़ने, पहचानने के लिये चुनौती है। स्त्री विमर्श की दृष्टि से 'सेवा सदन', उमरावजान अदा की अपेक्षा अधिक सशक्त उपन्यास है। इस संदर्भ में रामविलास शर्मा का कथन उचित जान पड़ता है... "सरशार और मिर्जा रुसवा को काले कोसों पीछे छोड़ते हुये प्रेमचन्द ने यह उपन्यास पहले उर्दू में लिखा था।" 'निर्मला' उपन्यास तो एक त्रासदिक रचना है लेकिन जीवन के अंतिम समय में 'निर्मला' जागरुक नारी के रूप में दिखाई देती है।

'सुमन', 'निर्मला' की अपेक्षा कहीं अधिक साहसी एवं हिम्मती है। दोनों की तुलना करते हुये डॉ. शर्मा लिखते हैं- "उसका (निर्मला) भय दूर हो गया है, लेकिन बहुत देर में दूर हुआ। वह मंसाराम की जान बचा सकती थी और बचा लेती, अगर इतनी हिम्मत उसने जरा पहले दिखाई होती। निर्मला सुमन नहीं है। वह कभी न कह पाती- जहाँ मंजूरी करूँगी, वहीं पेट पाल लूँगी।" 'गबन' की 'जालपा' घोर संकट में भी अपने साहस एवं धैर्य को नहीं खोती। पति को ढूँढ़ती हुई जब वह कलकत्ता पहुँचती है और क्रांतिकारियों को सजा दिलवाने के लिये उसे खूब फटकारती है। इसी के फलस्वरूप वह (रमानाथ) जज से सच्ची बातें कह देता है। इस तरह वह क्रांतिकारियों को रिहा करवाती है। डॉ. शर्मा 'जालपा' को भारत का उगता हुआ नारीत्व कहते हैं। 'जालपा' १९३० के आसपास के नारी-मुक्ति आंदोलन की प्रतीक बनकर हमारे सामने आती है।

'गबन' की 'रतन', जालपा से अधिक विद्रोही एवं जागरूक नारी है। उसका भतीजा, धोखे से चाचा की सारी सम्पत्ति अपने नाम करा लेता है तो भी हार नहीं मानती, घुटने नहीं टेकती, वह अपने पैरों पर खड़े होने का निश्चय करती है।

जालपा-रतन निर्मला की तरह घुल-घुलकर प्राण देने वाली नहीं और न सुमन की तरह तैश में आकर जल्दी ही किसी अनजानी राह पर कदम उठाने वाली नारी है। वे अन्त तक विद्रोह करती रहती हैं और समाज को चुनौती देती हैं। 'कर्मभूमि' उपन्यास में नारियों का एक पूरा दस्ता विद्रोह का झंडा उठाये चल रहा है। उनमें सुखदा, विद्रोह और नारी-जागरण की सजीव मूर्ति है।

सुखदा परम्परागत पातिव्रत्य धर्म के अनुकरण पर चलने वाली हिन्दू नारी नहीं है। वह पति के अच्छे-बुरे कार्यों को आँख मूँदकर स्वीकार करने के पक्ष में नहीं है। जब उसे ज्ञात होता है कि अमरकान्त का सकीना से प्रेम हो गया तो वह उसे क्षमा नहीं करती। वह उससे सभी संबंध तोड़ लेती है और सकीना से कहती है, "उन्होंने मेरे साथ विश्वासघात किया। मैं ऐसे कमीने आदमी की खुशामद नहीं कर सकती।"

प्रेमचन्दयुगीन नारी 'तलाक' की बात भी करती है। यह कहना, उस समय बहुत बड़ी बात समझी जाती थी। वह (सुखदा) नैना से कहती है- "तलाक की प्रथा यहाँ हो जाने दो फिर मालूम होगा कि हमारा जीवन कितना सुखी है।" यह परम्परागत नारी की आवाज नहीं है बल्कि आधुनिक चेतन सम्पन्न नारी की आवाज है। यही वह काल है जब भारतीय नारियाँ राजनीति के क्षेत्र में सक्रिय भाग लेने लगी थीं और उनमें कुछ देश की प्रसिद्ध नेता के रूप में विकसित हुईं। प्रेमचन्द ने सुखदा, जालपा, सोफिया आदि नारियों को विभिन्न सामाजिक, राजनैतिक आंदोलनों में भाग लेते एवं नेतृत्व करते हुये प्रस्तुत किया है।

प्रेमचन्द ने निम्नवर्ग (गरीब एवं दलित) की नारी को अधिक कर्मठ एवं जुझारू रूप में चित्रित किया है। नारी-चेतना का एक स्वस्थ एवं विद्रोही रूप धनिया में मिलता है। शोषणपूर्ण सामाजिक व्यवस्था के प्रति भी धनिया के मन में तीव्र विद्रोह का भाव है। वह जमींदारों की खुशामद करना, उनके तलुवे सहलाना पसंद नहीं करती है। जब थानेदार और गाँव के पंच मिलकर होरी से तीस रुपये ठगना चाहते हैं तो धनिया जबर्दस्त विरोध करती है और निर्भीक होकर दरोगा को भी लताड़ती है- "पहना दो हाथ में हथकड़ियाँ। देख लिया तुम्हारा न्याय और तुम्हारी अक्ल की दौड़। गरीब का गला काटना दूसरी बात है। दूध का दूध, पानी का पानी करना दूसरी बात है।" यही धनिया सारी बिरादरी को ठोकर मारकर झुनिया को स्वीकार करती है क्योंकि उसका बेटा जिसकी बाँह पकड़ कर लाया है, वह अब उसके घर की लाज है इसी के साथ ग्राम विप्र की रखैल चमारिन सिलिया को भी परित्यक्ता होने पर वह अपने घर में शरण देती है। इसीलिये गाँव के पंच जब होरी को दंड देते हैं तब वह कहती है, "मुझसे इतना बड़ा जरीमाना इसलिये लिया जा रहा है कि मैंने अपनी बहू को क्यों अपने घर में रखा। क्यों उसको निकालकर सड़क की भिखारिन नहीं बना दिया। यही न्याय है एँ।" वह पंचपरमेश्वर की भी परवाह नहीं करती। इसके अमानवीय न्याय को धिक्कारती है। धनिया का यह साहस और अन्याय के विरुद्ध सिर न झुकाने वाली तत्कालीन जागृत एवं जुझारू नारी का रूप प्रस्तुत करती है।

प्रेमचन्द के स्त्री विमर्श को उनके नारी विषयक विचारों के परिप्रेक्ष्य में ही जाँचना और परखना उचित होगा। प्रेमचन्द पाश्चात्य संस्कृति में लिप्त, भारतीय नारी को देखने के पक्ष में नहीं थे। मालती को प्रेमचन्द आधुनिक नारी के प्रतीक रूप में प्रस्तुत करते हैं। उसका परिचय देते हुये लिखते हैं- "गात कोमल पर चपलता कूट-कूट कर भरी हुई। झिझक या संकोच का कहीं नाम नहीं, मेकअप में प्रवीण, बला की हाजिर जवाब। जहाँ आत्मा का स्थान है, वहाँ प्रदर्शन, जहाँ हृदय का स्थान है, वहाँ हाव-भाव, मनोद्गारों का कठोर निग्रह जिसमें इच्छा या अभिलाषा का लोप-सा हो गया।" प्रेमचन्द इस आधुनिक नारी को, गोदान में आदर्श भारतीय नारी में बदल देते हैं। इसीलिये प्रेमचन्द ने मेहता के माध्यम से आदर्श भारतीय नारी की विशेषताओं को रेखांकित किया है। प्रेमचन्द नारी के माता रूप को महत्व देते हैं, कामिनी या रमणी रूप को नहीं। यही कारण है कि वे तेजवान एवं विद्रोही समुन वेश्या को आदर्शवादी सुमन बना देते हैं। यहाँ प्रेमचन्द की सुधारवादी दृष्टि का परिचय मिलता है। वे चाहते थे कि नारियाँ इस कर्म को छोड़कर समाज में सम्मानपूर्ण जीवन की शुरुआत करें। सेक्स के प्रति वे नैतिकतावादी थे। स्त्री विमर्श का महत्वपूर्ण पक्ष उनके यहाँ यौनशुचिता है। इस दृष्टि से प्रेमचन्द का स्त्री विमर्श आज के स्त्री विमर्श से कहीं अधिक परिपक्व है। पिछले दो दशकों में हिन्दी साहित्य में (विशेषकर उपन्यासों में) स्त्री विमर्श का

नारा इतना बुलन्द हुआ कि नैतिक मूल्यों पर प्रश्न-चिन्ह सा लग गया। नारी-मुक्ति के लिये यौन शुचिता आज एक अवरोध माना जाता है और इससे जुड़ी हुई कौमार्य, सतीत्व, पातिव्रत आदि धारणाएँ नारी के विकास में बेड़ियाँ मानी गयी हैं। कृष्णा सोबती, मृदुला गर्ग, प्रभा खेतान और मैत्रेयी पुष्पा के नारी पात्रों में उन्मुक्त भोग और स्वच्छंदता को देखा जा सकता है। प्रेमचन्द के नारी पात्रों में यौन स्वच्छंदता नहीं मिलती है, यदि मिलती भी है तो सुधारक प्रेमचन्द तुरन्त उसका निदान करते हुये दिखाई देते हैं।

प्रेमचन्द के नारी-विषयक विचारों में अनेक अन्तर्विरोध दिखाई देते हैं। एक ओर वे समाज में स्त्री की स्थिति के प्रति अत्यन्त संवेदनशील हैं। इसका प्रमाण उनके द्वारा लिखित 'जागरण' एवं 'हंस' की सम्पादकीय टिप्पणियाँ हैं। (शारदा बिल, हंस, जनवरी १९३१), (नारी-जाति के अधिकार, हंस, फरवरी, १९३१) और (भारतीय महिलाओं में नवीन जाग्रति, हंस, दिसम्बर १९३२) आदि टिप्पणियों में वे नारी की जोरदार वकालत करते हुये दिखाई देते हैं तो दूसरी ओर नारी विषयक पुराने आदर्शों के प्रति उनका मोह भी बना हुआ है।

प्रेमचन्द के नारी-विषयक विचारों में अन्तर्विरोध हो सकते हैं, यह समय की माँग भी हो सकती है, लेकिन वे अपने उपन्यासों में स्त्रीहितों, स्त्री अधिकारों, स्त्री चेतना, स्त्री विद्रोह एवं स्त्री मुक्ति की बात करते हैं। इसके लिये प्रेमचन्द नारी-सुधार, नारी-आदर्श एवं नारी-यथार्थ कोई भी मार्ग अपनाने को सदैव तैयार रहते हैं।

निष्कर्ष रूप से कहा जा सकता है कि प्रेमचन्द ने अपने उपन्यासों में समकालीन भारतीय नारी की अशिक्षा, पराधीनता और विवशता का यथार्थ चित्र प्रस्तुत किया है। इसके साथ ही उन्होंने नारी को अपनी दयनीय स्थिति से मुक्ति के लिये विद्रोह करते हुये भी दिखाया है। यूँ तो प्रेमचन्द, मध्यवर्ग एवं निम्नवर्ग की नारियों को ही विद्रोह करते और स्वाधीनता संग्राम में भाग लेते हुये दिखाते हैं परन्तु उच्च वर्ग की नारियों स्थिति एवं विद्रोह को भी यत्र-तत्र दिखाते जाते हैं। इससे स्पष्ट होता है कि भारतीय नारी अब विद्रोह की ओर अग्रसर हो रही है। नारी की इसी शक्ति में स्त्री-विमर्श की सार्थकता है।

●

पता- रीडर, हिन्दी विभाग, गोवा विश्वविद्यालय